OCTOBER, 2002

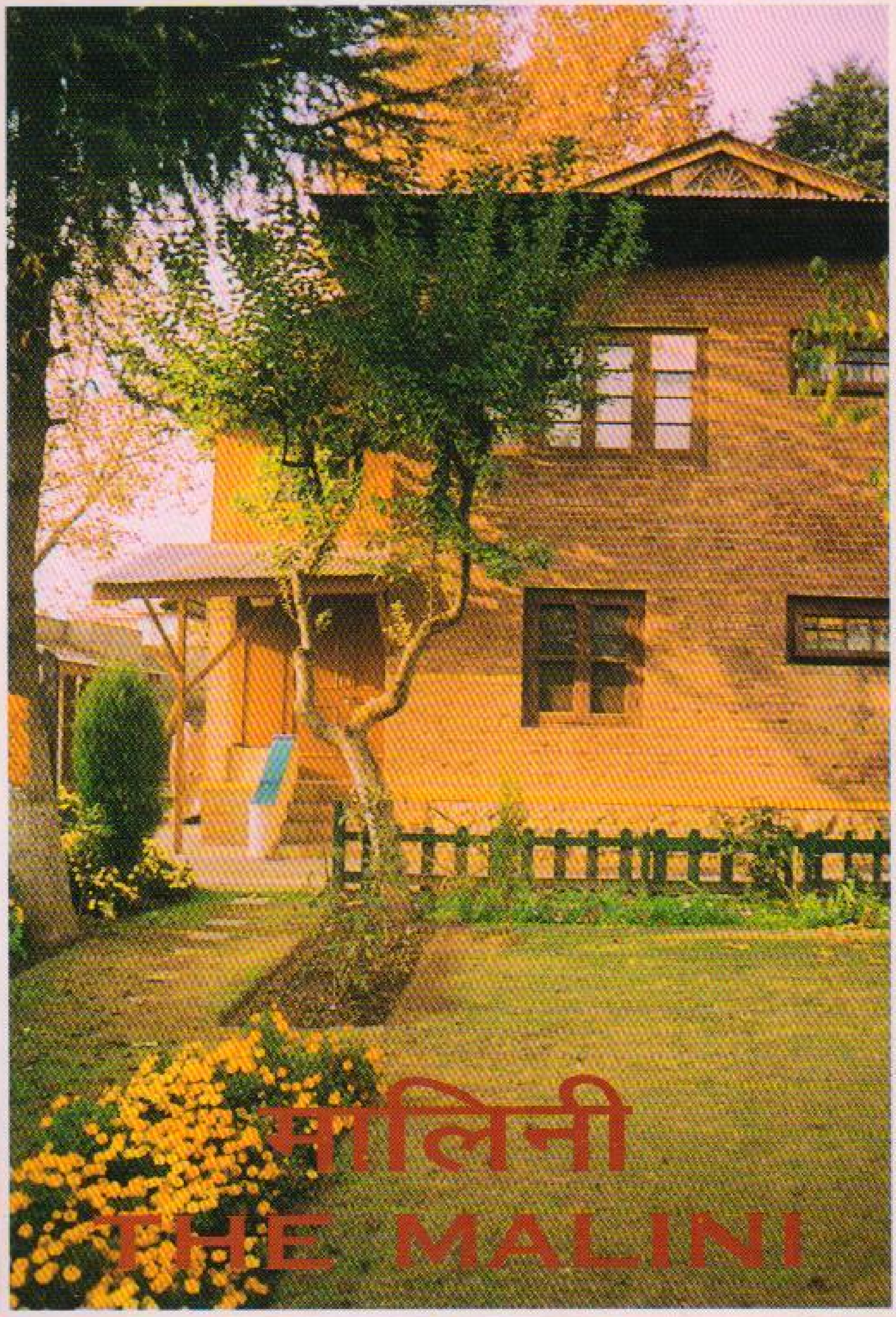

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Vol. VIII NO. III ISSUE XXX
OCTOBER, 2002

मालिनी

THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।

भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union with her all the treatises of non-dualistic order achieve the nature of divine potency.

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :
Sri Inderkrishan Raina
(Secretary/Trustee)

Sri Samvit Prakash Dhar
Sri Brijnath Kaul
Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :
Sushri Prabhadevi
Prof. Nilakanth Gurtoo
Prof. Makhanlal Kukiloo
Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan
(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :
Ishwar Ashram Trust
Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

Administrative Office :
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 553179, 555755

Branch Office :
R-5/D Pocket, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044
Tel. : 26958308, 26974977
Telefax : 26943307

October, 2002
Price : Rs. 25.00
Yearly subscription : Rs. 100.00
© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust
by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

संपादक की लेखनी से		4
01. Śiva Sūtras	*Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Māharāja*	6
02. Tantrasāra	*Dr. B. N. Pandit*	10
03. Tripursudari - The Mother Divine	*C.L. Tickoo*	15
04. Self or True Knowledge	*V.N. Jotshi (Bhat)*	19
05. Some Unforgettable Memories	*Mrs. Usha Kak*	22
06. शिवागमों का विस्तार-प्रतिसंहिता क्रम के दर्पण में	ईश्वराश्रम पुस्तकालय से प्राप्त	24
07. स्मृति के स्वर्णिम क्षण	*सुश्री प्रभादेवी*	29
08. शैव दर्शन के वातायन से	*प्रो० नीलकंठ गुर्टू*	31
09. शिवाष्टकम्	*प्रो० मखनलाल कुकिलू*	33
10. ईश्वर आश्रम के ईश्वर स्वरूप	काशीनाथ जाड़ू	37
11. From Ashram Desk	Administrative Office	38

संपादक की लेखनी से

मालिनी का यह अंक जिज्ञासु पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए हमें महान् हर्ष हो रहा है। सद्गुरु महाराज की ग्यारहवीं पुनीत निर्वाण तिथि के पश्चात् प्रकाशित हो रहा यह अंक सद्गुरु महाराज के अपार वैभव की स्मृति से दोलायित करता है। अपने भक्तों व शिष्यों को त्रिकाल-सत्य ब्रह्म-ज्ञान प्रदान करने वाला, दर्शन मात्र से ही अशुभ प्रकार के कर्म बीज को अंकुरत्व शक्ति से विहीन करने के सामर्थ्य को धारण करने वाला, अविद्या के आवरण से आच्छादित अपने भक्तों के नेत्रों को ज्योति प्रदान करने के लिए सुन्दर दिव्यांजन के समान ज्योतिप्रद, पूर्व जन्मों में अर्जित असत्कर्मों के विनाशक, आनन्द के महासमुद्र से उत्पन्न अपने सुन्दरतम शुभस्वरूप से सदा आह्लाद प्रदान करने वाला, त्रितापसन्तप्त जीव को सहज शान्ति का रसास्वादन कराने वाला, प्राणीमात्र द्वारा की गई लोककल्याण की भावना को सफलता प्रदान करके संसार के कल्याण कार्यों में प्रोत्साहन प्रदान करने वाला, अपने परम मास्वर-स्वरूप से समस्त संसार के प्राणियों को आध्यात्मिक शान्ति देने वाला, मंगलमय लोक कल्याण कारी संकल्पों का, सिद्धिदायक, अप्राप्यआत्म-ज्ञान तत्त्व की प्राप्ति तथा प्राप्त किये हुए की सुरक्षा करने की अनुकम्पा करने वाला, सत्त्वगुण की साक्षात् मूर्ति होने के कारण सत्यस्वरूप, मत मतान्तरों में भटके हुए जीवों को ज्ञान ज्योति प्रदान करने वाला, अक्षय शान्ति प्रदाता और परम स्वतन्त्र होते हुए भी पराधीन व्यक्ति के समान भक्तों के अधीन रहनेवाला हमारा सद्गुरुदेव ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज गंगा के पावन प्रवाह की तरह, सम्पूर्ण त्रैलोक्य को अपने इस निर्वाण दिवस पर पावन करने की शक्ति रखते हैं। श्री गुरुदेव के श्री चरणविन्दों पर सदा भ्रमर तुल्य मंडराते रहने की अभिलाषा निर्वाण दिवस पर ही सच्चे साधक को परिपूर्ण होती है। जिस प्रकार लौकिक और दिव्यनदियां समुद्र में अवसान् करती हैं उसी प्रकार सद्गुरुदेव की समस्त ज्ञान गंगा निर्वाण दिवस पर सत् शिष्य को परिप्लुत करती है। हे योगिराज ! हमारी यही मनोकामना है कि हमें सच्ची भक्ति दो तथा अटूट श्रद्धा और आत्मिक शक्ति से प्रज्वलित करो।

जय गुरुदेव !

सद्गुरुदेव के प्रेमी व भक्तजन यह पढ़कर प्रफुल्लित होंगें कि दिल्लीस्थित सरिता विहार के ईश्वर-आश्रम भवन का रुका पड़ा कार्य पुनः प्रारम्भ हुआ और आशा है कि श्री गुरुमहाराज के आशीर्वाद से और आप सब गुरुप्रेमियों के सहयोग से निर्माण कार्य

की प्रगति में अब कोई बाधा नहीं आयेगी। दिल्ली ईश्वर-आश्रम-भवन के संयोजक श्री अवतार कृष्ण गंजू धन्यवाद के पात्र हैं कि उनकी देख रेख में भवन निर्माण कार्य विशेष प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

यह महान् प्रसन्नता का विषय है कि हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी सद्‌गुरु महाराज का पावन निर्वाण दिवस श्रीनगर, जम्मू और दिल्ली के ईश्वर आश्रम भवनों में धूमधाम से मनाया गया। हजारों श्रद्धालुओं ने सम्मिलित होकर अपने श्रद्धासुमन समर्पित करके प्रत्येक केन्द्र पर आयोजित महायज्ञ अनुष्ठान में सद्‌गुरुदेव की कृपा का सौभाग्य प्राप्त किया।

ईश्वर आश्रम परिवार को उन दानियों की उदारता पर महान गर्व है जो समय समय पर अपनी दानवीरता का परिचय देकर हमारा अपार उत्साह बढ़ा रहे हैं। सद्‌गुरुदेव उनकी मनोकामना सम्पूर्ण करें। स्मरण रहे कि दानवीरों की यह आर्थिक सहायता केन्द्रीय आयकर विभाग की धारा-८० के अन्तर्गत आयकर से विमुक्त होगी।

ईश्वर आश्रमट्रस्ट के सचिव श्री इन्द्र कृष्ण रैना के आदेशानुसार मालिनी के अगले अंकों में उन सभी महानुभावी दानियों का परिचयात्मक विवरण उनके रंगीन फोटो के साथ प्रकाशित होगा जो दानवीर अमृतेश्वर-भैरव मन्दिर आदि के निर्माण कार्य के लिए दस हजार रुपये या उससे अधिक धनराशि का दान देने की इच्छा रखते हों।

कृपया निर्धारित धनराशि के चैक के साथ परिचयात्मक विवरण और अपना रंगीन फोटो भेजना न भूलिये। वह आपकी महती कृपा होगी।

दयाशील दानी सन्तों की जगमें हो नित जयजयकार।
दानवीर राधेय शिविनृप मानो आये हैं साकार॥

समस्त ईश्वर आश्रम परिवार की ओर से नववर्ष की हार्दिक शुभकामनायें।

—प्रो. मखनलाल कुकिलू

Third Section

ŚIVA SŪTRAS

Vimarśini Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Māharāja

(Continued from July issue)

इदानीं आणवोपायं प्रतिपिपादयिषुः, अणोः तावत्स्वरूपं दर्शयति –

Now desirous of explaining Āṇavopāya Vasugupta describes the nature of aṇu (the individual self)

आत्मा चित्तम् ॥ १ ॥

(Ātma Cittam)

Here (in Ānavopāya) mind is the nature of individual being.

In the first Sūtra of the first awakening the Sūtrakāra has given the definition of self. In the first Sūtra of the second awakening also he has given the reality of the self. Now in the third awakening also he is explaining the reality of the self. But here is difference. In the first Sūtra of first awakening he has put "चैतन्यमात्मा" Caitanyamatma (universal consciousness is one's own nature). In the first sūtra of the second awakening he has put "चित्तं मंत्रः", (Cittam mantraḥ, by intensive awareness the mind of a yogi becomes Mantra). i.e. अहं - Supreme I-Consciousness. In the third awakening he has again explained the formation of self and that self is absolutely one with the limited state of thought and mind.

यदेतत् विषयवासनाच्छुरितत्वात् नित्यं तदध्यवसायादि व्यापार बुद्धि अहंकृत् मनोरूपं चित्तः तदेव अतति - चिदात्मकस्वस्वरूप अख्यात्या सत्त्वादिवृत्त्यवलम्बनेन योनीः संचरति, इति आत्मा अणुः इत्यर्थः। नतु चिदेकरूपस्य अस्य अतनमस्ति। अतएव 'चैतन्यमात्मा' (१-१) इति स्वभावभूत तात्त्विकैतत्स्वरूपप्रतिपादन आशयेन पूर्वं आत्मा लक्षितः। इदानीं तु एतदीय संकोच अवभास प्रधान आणवदशौचित्येन, इति न पूर्वापर वैषम्यम्॥

यदेतत् – mind which is, विषयवासनाच्छुरितत्वात् नित्यं - soaked or saturated, in the impression of sensual pleasures eternally, तदध्यवसायादि व्यापार बुद्धि अहंकृत् मनोरूपं चित्तं - he is attached to three intellectual organs namely mind, intellect and ego. The function of these intellectual organs is

as follows —understanding —what is to be done is completed by the organ of intellect (बुद्धि), the thought of how to do is put by mind, (मन) the thought this is to be done by me is put by ego (अहंकार) with these three movements of the mind the individual being is called आत्मा। It is आत्मा because आत्मा as per root "अत्" means सातत्यगमने i.e. who always moves. He goes repeatedly in the cycle of birth and death, and that mind is आत्मा। By this process he neglects his own real nature. He moves by taking hold of Sātvika (सात्विक) state of thought sometimes 'Rājasa' (राजस) state of thought and sometimes 'Tāmāsa' (तामस) stare of thougout. At the time of death if he is situated in Sâtvīka state he moves to higher lives. At the time of death, if आत्मा is situated in 'Rājasa' state, he moves to luxurious lives and if he is situated in 'Tāmāsa' state he moves to beasts and trees in the form of deaden consciousness. This is the way of आत्मा which is the form of individual being. But the mind which has become one with God-consciousness, does not move in this way. He moves in his own way of nature. It is why it has been told in first Sûtrā of first awakening that चैतन्यमात्मा i.e. independent God-consciousness is real self. So it was explained in the previous Sūtra that आत्मा is nothing other than God-consciousness. But आत्मा here in present Sûtrā is defined as very inferior being. This is the state of individuals. The supreme being when possess the state of individuality, he becomes the form of indivduality. Because he is shrunk there from all sides. So you should not calculate that आत्मा has been explained in different ways. All these explanations put forth by the author so far in previous chapters are all correct in their own place. इति न पूर्वापर वैषम्यम् - Thus there is no difference of opinion in the previous and the later definitions.

अस्य चित्तस्वरूपस्य अण्वात्मनः—

The individual being who has become one with the limited mind which is soaked in the impressions of wordly pleasurs, for him is

ज्ञानं बन्धः ॥ २ ॥

(Jnanam bandhaḥ)

Differentiated knowledge of pain and pleasure is bondage.

सुख - दुःख मोहमयाध्यवसायादि वृत्तिरूपं तदुचित भेदावभासनात्मकं यत् ज्ञानं, तत् बन्धः। तत्पाशितत्वादेव हि अयं संसरति तदुक्तं श्रीतन्त्रसद्भावे।

सत्त्वस्थो राजसस्थश्च तमस्थोगुणवेदकः।
एवं पर्यटते देही स्थानात् स्थानान्तरंव्रजन्॥

इति। एतदेव

तन्मात्रोदयरूपेण मनोऽहंबुद्धिवर्तिना।
पुर्यष्टकेन संरुद्धस्तदुत्थं प्रत्ययोद्भवम्॥
भुंक्ते परवशो भोगं तद्भमावात् संसरेत्। इत्यनेनानूदितम्।

अतः

संसृति प्रलयस्यास्य कारणं सप्रचक्ष्महे। इत्येतत्प्रतिविधानाय स्पन्दशास्त्रे॥
सुखं दुःख मोहमय अध्यवसायादि वृत्तिरूपं –

The differentiated knowledge here operates in three ways of action understanding then establishment in that understanding and then attaching ego on that, that is action of three intellectual organs :— mind, intellect and ego. These are connected with सुख - pleasure, दुःख - pain, मोह - illusion. सुख is connected with the सात्विक state of life, दुःख with the राजसिक state of life and मोह with the तामसिक state of life. These three states of life are being operated by this differnetiated knowledge of individual beings; This kind of knowledge is always being possessed with diffrentiated state of knowledge not undifferentiated state of knowledge. तदुचित मेदावभासनात्मकं यत् ज्ञानं तत् बन्धः – That individuality is bondage, when he is entangled by these three ways of differentaited state of knowledge, तत्पाशितत्वादेव हि अयं संसरति – it is why he faces the repeated births and deaths. It is said in तन्त्रसद्भाव

सत्त्वस्थो – sometimes situated in the state of सात्विक state of being, राजसस्थश्च - तमस्थो –

sometimes in the state of राजसिक state being and sometimes in the तामसिक state of being, गुणवेदक : - in short he is residing in the perceptions of 'Guṇas', he is not beyond that circle of Gunas, एवं पर्यटते देही स्थानात् स्थानान्तरं व्रजन् – it is why he moves births and deaths from one body to another. तदेव – इत्यनेनानूदितं – this is said in स्पन्द also :—

तन्मात्रोदयरूपेण - when तन्मात्र - five subtle forms of matter move with, मनोऽहं बुद्धि वर्तिना – three intellectual organs i.e. mind, ego, and intellect, पुर्यष्टकेन संरुद्धः तदुत्थं प्रत्ययोद्भवम् – these collectively eight functions are in

dreaming state and called collectively as पुर्यष्टक and this पुर्यष्टक stops you with the reality of truth. भुङ्क्ते परवशो मोगं तद्भावात् संसरेत् – and when that is ignored then he dependently enjoys the enjoyment there. He can not put negation on this enjoyment or he can not refuse . By this act he becomes a football i.e. he is being played by repeated births and deaths. अतः – therefore, संसृति प्रलयस्यास्यकारणं संप्रचक्ष्महे – he puts forth the remedies for not being carried away by the repeated births and deaths इत्येतत् प्रतिविधानाय स्पन्दशास्त्रे – how to get rid of this wheel of repeated births and deaths, it is explained in स्पन्दशास्त्र।

ननुच

ज्ञानं प्रकाशकं लोके आत्मा चैव प्रकाशकः।

अनयोरपृथगभावात् ज्ञाने ज्ञानी प्रकाशते॥

इतिश्री विज्ञान मैरवोक्तदृष्ट्या ज्ञानमपि प्रकाशमयमेव, इति कथमस्य बन्धरूपत्वम्। सत्यमेतत् यदि परमेश्वर प्रसादात् एवं प्रत्यभिज्ञायेत, यदातु तन्मायाशक्तितोनैवं विमर्शः तदा॥ ननुच – when it is explained already that ज्ञानं प्रकाशकं लोके in this world knowledge is filled with enlightenment. आत्मा चैव प्रकाशकः – and knower also enlightens you, उमयोरपृथगभावात् – so both being one, i.e. knowledge and knower (i.e. ज्ञान and ज्ञानी) ज्ञानी ज्ञाने प्रकाशते – ज्ञानी- knower shines in ज्ञान – knowledge. इति श्री विज्ञान मैवोक्त दृष्ट्या ज्ञानमपि प्रकाशमयमेव इति कथं अस्यबन्धरूपत्वं – thus as per विज्ञानमैरव, knowledge enlightens you not deprives you from enlightenment, then how it is said that knowledge is bondage.

सत्यमेतत् – It is true, यदि परमेश्वर प्रसादात् – when by the grace of God, एवं प्रत्यभिज्ञायेत – that you know that the whole universe is full with knowledge of god. then it is not bondage. यदातु तन्मायाशक्तितो नैवं विमर्श – when by the energy of illusion you are not aware this way then what happens :—

(Continued)

Introduction of तन्त्रसार (Tantrasāra)

— *By Dr. B. N. Pandit*

विमलकलाश्रयाभिनव सृष्टि महा जननी
भरित तनुश्च पञ्चमुखगुप्तरुचिर्जनकः।
तदुभययामल स्फुरितभावविसर्गमयं
हृदयमनुत्तरामृतकुलं मम संस्फुरतात्॥

Vimala-kala_śrayābhinava-sriṣti-mahā-jananī;
Bharita-tanusca pancamukha-gupta-rucir janakaḥ
Tadubhaya-yāmala-sphurita-bhāva-visargamayam
Hṛdayaṃ anuttarāmrta-kulam mama samsphuratāt

Śakti, the sub-stratum of the pure creative art, revealing in ever new creation, is my mother and that reality (Śiva), which, being full upto brim, maintaining its five faced hobby (of creation etc.), is my father. May my inner self, consisting of the positive creation, brought about by the flutter of the coupled union of both of them, shine as the totality of the transcendental nectar (of pure consciousness).

The names of the author, *Abhinavagupta,* his mother *Vimalakala* and his father *Narasiṃha* (Pañcamukha) - gupta have been suggested here through a dramatic technique, termed as *Mudranālankāra,* used very frequently by the ancient dramatist Bhasa in his plays.

विततन्त्रालोको विगाहितुं नैव शक्यते सर्वैः॥
ऋजुवचन-विरचितमिदं तु तन्त्रसारं ततः शृणुत॥ २॥

Vitatastantrāloko vigāhitum naiva śakyate sarvaiḥ;
Ṛju-vacana-viracitaṃ idamtu Tantrasāraṃ tataḥ Śrṇuta.

Tantrāloka, being an immensely extensive work, cannot be explored by every one. Therefore, this *Tantrasāra* may please be listened to, as it has been composed through a simple expression.

श्री शम्भुनाथभास्कर-चरणनिपातप्रभापगत सङ्कोचम्।
अभिनवगुप्तहृदम्बुजमेतद विचिनुत महेशपूजन हेतोः॥ ३॥

Śri-Śambhunatha-bhāskara-caraṇa-nipāta-prabhāpagata-saṅkocam,
Abhinavagupta-hṛdambujam-etad vicinuta Maheśa-pūjana-hetoh.

Please collect this lotus of the heart of Abhinavagupta for the purpose of the worship of Lord Śiva, as it has become free from its contraction (and finitude), as a result of the lusture of the rays (caraṇ) of śambhunātha (the

great master preceptor of Abhinavagupta).

Tantrasara represents the heart of the author as it expresses the highest spiritual and divine experience of his absolute unity with the Lord. So the knowledge to be obtained through its study is the best lotus flower with which the Absolute Lord can be worshipped by a yogin. The word caraṇa means both-feet and rays.

इह ज्ञानं मोक्षकारणं, बन्धनिमित्तस्याज्ञानस्य निरोधकत्वात्।

Iha jñānaṃ mokṣakāraṇaṃ
bandha-nimittasya ajñānasya ñirodhakatvāt

Knowledge is here the cause of liberation, because it is hostile to ignorance, the cause of bondage. As discussed in Tantrāloka, it is just in an indicative sense through which knowledge is said to be the cause of liberation. In fact, ignorance regarding the real nature of the self is itself bondage and correct knowledge about it is itself liberation.

द्विविधं चाज्ञानं, बुद्धिगतं, पौरुषं च तत्र बुद्धिगतमनिश्चयस्वभावं
विपरीतनिश्चयात्मकं च। पौरुषत्वविकल्पस्वभावं सङ्कुचित प्रथात्मकं
तदेवच मूलकारणं संसारस्येति वक्ष्यामो मलनिर्णये।

Dvividham cājnānam, buddhigataṃ, paurusam catatra
buddhigatam aniscaya-svabhavam, viparitaniscayamtmakaṃ
ca; Paurusam tva-vikalpa-svabhāvam sankucita-prathatmak,
tadeva ca mūlakaranam samsarasyeti vaksāmo mala-nirṇaye.

Ignorance is of two types; one involving the understanding sense and other having its hold on the very person of a being. That, which lies in one's understanding, is either the lack of a firm conviction or the existence of a wrong or incorrect conviction. Ignorance, lying in one's very person, is a non-conceptual firm belief and actual feeling alert in his being finite in nature and that is the root cause of transmigratory position. That is to be discussed (at length) while dealing with the topic of impurity.

तत्र पौरुषमज्ञानं दीक्षादिना निवर्तेतापि, किन्तु दीक्षापि
बुद्धिगतेऽनध्यवसायात्मकेऽज्ञाने सति न सम्भवति-
हेयोपादेय निश्चयपूर्वकत्वात् तत्त्वशुद्धिशिवयोजना रूपाया दीक्षाया इति।

Tatra pauruṣamajñanam dīkṣādinā nivartetāpi, kintu dīkṣāpi
buddhigate, nadhyavasāyātmake-ajñāne sati na saṃbhavati,
heyopādeya-niscaya-purvaka-tvāt tattva-śuddhi-śiva-yojanā-rūpāyāḥ
dīkṣayāyā iti.

Even though ignorance regarding the real nature of one's self may vanish as the result of the means like the rite of initiation, yet (it remains a fact that) initiation cannot itself be imparted so long as ignorance in the form

of confusion in one's understanding sense continues to exist, because initiation, aimed at (a) cleansing of the (self-imposed coverings of) tattvas and (b) the rite of directing towards unity with śiva, requires a firm conviction with regard to that which is to be avoided and that which is to be attained.

A Śaiva preceptor, while impārting dīkṣā (initiation) to his disciple, clears away his physical and mental coverings made of tattvas and directs him towards perfect unity with Śiva. All that becomes possible only when the disciple concerned has got the theoretical and intellectual knowledge of such realities. Therefore intellectual knowledge of theories is as important as the gracious activity of a preceptor.

तत्राध्यव सायात्मकं बुद्धिनिष्ठमेव ज्ञानं प्रधानम् तदेव चाभ्यस्यमानं
पौरुषमप्यज्ञानं निहन्ति, विकल्प संविदम्यासस्याविकल्पान्तता
पर्यवसानात्॥

Tatrādhyavasāyātmakaṃ buddhi-niṣṭhameva
jñānaṃ pradhānaṃ Tadeva cābhyasyamānaṃ
pauruṣamapi ajñāṃ nihanti, vikalpa-
saṃvid-abhyāsa-syāvikalpāntatā-paryava-sānāt.

There it is the correct knowledge, consisting of an intellectual conviction, which is of greater importance. It is only that which, being practised will, destroy also the ignorance lying in the very person of a being, because practice in ideational (savikalpa) knowledge leads finally to the non-ideational (and direct) realization of the self.

विकल्पासङ्कुचित-संवित्प्रकाश-रूपो ह्यात्मा शिव-स्वभाव इति
सर्वथा समस्तवस्तुनिष्ठं सम्य-ङ्-निश्चयात्मकं ज्ञानमुपादेयम्।

Vikalpāsaṅkūcita-saṃvit-
prakāsrupo hyātmā siva-sva-
bhāva iti sarvathā samasta-
vastu-niṣṭhaṃ samyaṅ-nicayātmakaṃ jñānamuphadeyam.

Since Ātman, having Śivahood as its nature, consists of the psychic lustre of (pure) consiciousness, not reduced to (any sort of) finitude by any (wrong) ideation, the correct ideational knowledge of every thing is to be attained perfectly.

The correct ideational knowledge of every thing other than Ātman is essentially to be attained, as it is to be done away with for the purpose of the realization of the non-identional character of Ātman, shining itself as pure and perfect I-consciousness alone.

तच्च शास्त्रपूर्वकम्। शास्त्रञ्च परमेश्वरभाषितमेव प्रमाणम्।

अपरशास्त्रोक्तानामर्थानां
तत्र वैविक्त्येना-भ्युपगमात्, तदर्थाऽतिरिक्तयुक्ति सिद्ध-निरूपणाच्च।

Tacca śāstrapūrvakaṃ śāstrañca parameśvara-
bhāṣitameva pramāṇam
Aparaśāstroktānam arthānaṃ
tatra vaiviktyeṇāibhyupaga
māt, tadarthātiriktayukti
siddha-nirūpaṇacca.

That is to be attained in accordance with sāstra (scriptural authority). Only the śāstra uttered by Parameśvara (the almighty Lord Śiva) is perfectly correct; because the subject matter, discussed in other śāstras, has been accepted (and alloted its proper place) at various stages (and places or points) and the additional subject-matter, proved by arguments as being correct, has also been discussed there (in the śāstra of Śiva).

Nyāya-śāstra explores the philosophical truth only upto the principle of the creation of gross phenomena by a personal God, out of atoms, and leads an aspirant upto a nonactive position in the state of the lack of all propensity. That is a state of suṣupti. Sāmkhya carries the exploration ahead and reaching the position of the spontaneous creation of atoms out of cosmic energy (mūla pṛakrti), leads an aspirant to the state of absolute lonliness (Kaivalya), brought about through the absorption of one's all senses, organs and mind by the cosmic energy. That is a deeper state of dreamless sleep. Vijnan-Vāda leads ahead to a sort of extinction of the individual I-consciousness into the void of nihillity and that is the absolutely thoughtless state of deep-sleep, the highest and the deepest suṣupti. The Advaita-Vedānta leads to the same state of suṣupti, but provides with a faint peep into turyā, the fourth state of intuitional revelation of the self as well. The whole phenomenon is realized there as being actually nonexistent and appearing falsely on the basis of the primordial ignorance called Māya.

The Śastra of Lord Śiva accepts and explains all such situations and steps in the evolution of the phenomenal existence, as well as those to be attained by some spiritual aspirants and allots proper places to them on the basis of logical argumentations, yogic experiences and scriptural authority.It leads further ahead to much higher steps in Turyā at which an aspirant realizes Māyā as a divine power of Lord Maheśvara and discovers himself to he none other than him. That is the state of actually correct realization of the self, known as Pṛatyabhijña. All the above mentioned principles of philosophy have been admitted to be correct up to certain levels of spiritual attainment and recognition of the absolutely real nature of the self has been

established as the final aim of philosohical teachings in accordance with the śaśstra of Lord śiva.

तेनापरागमोक्तं ज्ञानं तावता एव बन्धाद् विमोचकम्, न सर्वस्मात्,
सर्वस्मात्तु विमोचकं पारमेश्वर शास्त्रं, पञ्च स्त्रोतोमयं,
दशाष्टादश-वस्वष्टभेद भिन्नम्।

Therefore the knowledge discussed in other (lower) scriptures is capable to liberate from just that much of bondage, but not from the whole of it. Śaśtra, capable to liberate from all bondage, is only that of Lord S'iva, which, consisting of five flows, is analysed into ten, eighteen and sixtyfour scriptural works.

ततोऽपिसर्वस्मात्सारंषडर्ध शास्त्राणि। तेभ्योऽपि मालिनीविजयम्।

Beyond them is the position of the half of the six (that is the group of three, known as Trika), which are the best of all within them also excells Malini-vijaya.

The highest position is enjoyed by three scriptural works (known as Trika). Trika means the group of three and those are :- Sidha-tantra, Vāmaka-tantra nāmaka tantra in accordance with the printed version of Tantrāloka-viveka) and Mālini tantra. These three are the half of six (ṣdardhabava the other three being Saura, Bhargasikha tantra etc.

तदन्तर्गतश्चार्थ सङकलय्या शक्यो निरूपयितुम्।
न चानिरूपित-वस्तु तत्वस्य मुक्तत्वं मोचकत्वं वा शुद्धस्य ज्ञानस्यैव
तथारूपत्वादिति। स्वभ्यस्त ज्ञानमूलत्वात् पर पुरुषार्थस्य तत्सिद्धय इदमारभ्यते।

Tadantargata ścarthaḥ sankalā
yyāśakyo nirūpayitum. Na
cānirūpita vastu tattvasya
muktatvaṃ
mocakatvaṃ vā.
S'uddhasya jñānasyaiva tathā-
rūpatvād iti. Svabhyasta-
jñānana-mūlatvat
para puruśārthasya.
Tatsiddhya idamā rabhyate.

The subject matter dealt with in that work can not be discussed in short. Then a person to whom the essence of the topic (of liberation) has not been discussed well can niether become liberated (himself), nor can he liberate (others), the pure correct knowledge alone being capable for it because such aim of the life of a being has its roots in the thoroughly practised knowledge (of the self). It is for such purpose that the composition of the work in hand

is being taken up

अज्ञानं किल बन्धहेतुरुदितः शास्त्रे मलं तत्स्मृतं
पूर्णज्ञानकलोदये तदखिलं निर्मूलतां गच्छति।
ध्वस्ताशेष-मलात्म संविदुदये मोक्षश्च तेनामुना
शास्त्रेण प्रकरीकरोमि निखिलं यज्ज्ञेय तत्त्वं भवेत्।

Ajñānaṃ-kila bandha-hetur uditaḥ śāstre malaṃ tat smrtam
Purna-jñān kālodaye tadakhilaṃ nirmūlatām gacchati,
Dhvastāśesa-malātma-samvid-udaye moksasca tenāmunā
Śāstrena prakatīkaromi nikhilam yajjńeya-tattvam bhavet.

Ignorance has been said to be the cause of bondage. It has been termed as mala (impurity) in sastrās. All of that becomes rooted up at the dawn of the art (or a digit) of the perfect self knowledge. Liberaation is attained as soon as one's self, consisting of pure consciousness, having annihilated all impurity, does arise. Therefore I am throwing light on the whole possible topic of self-knowledge through this philosophical treatise namely Tantrasāra.

TRIPURSUDARI – THE MOTHER DIVINE

(From the book "Mother Divine" (under print)

— *By C.L. Tickoo*

There are a number of myths, legends and ancient traditions available in the world, which indicate, female in varous forms as the object of worship. According to the archeologists and the historians the range of the cult of the Mother Goddess at one time extended without break from Indus to Nile. Worship of the Goddess in its completeness is one of the oldest and the widespread system of devotion in some parts of the world even today. This is an ancient cult and eventually given a high status throughout the cultural histories of the world. It was accepted beyond doubt that behind this universe there is a great force of what is called the Mother heart — love, compassion and protection for all.

It is seen that the blending of pre-Vedic Mother cult and Vedic father cult with Tantric philosphy of tantric cult enriched the Hindu religion in all its aspects. In no country worship or Divine Mother is so deep-rooted and universal as in India where Shiva-Shakti cult developed into what is

called the Shakti cult and spread through the length and breadth of India. The cult got appeal in the minds of the people hence developed and got preserved in full form. In courseof time, this formed the basis of later Shaktism. The Mother Divine _ Tripursundari, the Creator, Preservor and Destroyer, is worshipped under varied names, manifestations following different rituals.

The arrival of Islam and the tendency of destorying the images of Gods in the temples by some of the muslim rulers made more or less religious purusit unsafe for the Hindus in North India. This made some of the Brahmins of north to migrate south of Vindyans. They took along with them many religious pursuits, which included ;shaktism. With the passage of time, this led to the synthesis of original Tamil culture, which had continuity, stability of its own, and Aryan culture. The Shakti cult is very prevalent there and Goddess Tripursundari is worshipped in every house. There the Goddess is worshipped as an embodiment of all beauty — Sri Lalita Devi. She is the Goddess of wisdom love, Protection and condensed beauty of the entire three worlds. In Shakti Peethas of the Mediaval and later periods Sri Yantra engraved on metallic plate were the objects of puja. Even in the present day temples Sri Yantra is worshipped. In Western India, Shakti cult flourished and its followers worshipped the Mother Shakti, called by different names and forms, conceived as creator of all powers. Remnants of ancient temples and archological sites found in different parts of Western India point out to the sadhna of Shakti. Some temple sites have been dated to Gupta Period as 320 to 600 A.D. In Rajasthan, some temples around Bundi, the tantric scripture of rare value (of Shiva coiled up in its cosmic form) have been found. Also remnants of Shakti temples with sculptures of tantric nature delineated on the same principles as Sri Chakra, the ruling Deity Sri Lalita, are available even now. 18th century painting of Goddess are also indicative of Shakti worship. There are many Shakti Peetha found in the different parts of Rajasthan, Gujrarat and Maharastra which indicate how much popular was the worship of Goddess Tripursundari. In northern region, Kashmir, earlier was the land of Rishis where tantric doctirn practice was widely followed and there have been innumerable number of authorities on shakti cult. They not only practiced the elaborate forms and the rituals connected with the doctirne of Shakti worship but also gave a profound philosophical basis to the universal faith

and practice. All the Hindus there worshp Mother Tripursundari and Maha Rajana. In Punjab, Himachal Pradesh, Uttranchale and Uttar Pradesh Shakti worship is everywhere prevalent. In earlier periods Shakti **Satapanas** of prominence built still exist in some places in these states. Pahari paintings of early 18th century depicting Goddess Shakti are also indicative of the same. In Uttar Pradesh, Varanasi is the oldest and the main centrer of activity of tantric worship in India, which has influenced religous minded people sometimes immortal saints and sages have come here to nurture and cultivate the concept of God as the Mother Shakti. At Tirva village in Farrukabad district, in an ancient Annapurana temple, Sri Yantra drawn on a marble slab is placed on a pedestal. On the centre of the yantra stands an icon of the Goddess with her four hands holding Pasha, 'Ankusha, Danusha and Bana. Near vindhyavasini village a Sri Yantra was found in a small temple. There are many other ancient temples of Goddess Shakti found in Uttar Pradesh. In Eastern India, it is believed that the tantric form of Hinduism developed and witnessed tremendous growth especially in Assam. Saivism, mixed with varying forms of tantric rituals attained importance and somewhere between 200-500 A.D., probably Shakti cult developed in its full form and the goddess Kamakhaya, a manifestation of Divine Shakti Tripurasundari, worshipped. the highest expression of Indian mystism was witnessed in Assam in early period. There are a number of ancient temples where the presiding deity is Ardhanarishwara, whose worship is conducted according to tantric ritual. In Bengal, tantric worship has become equally popular with variation and the Goddess Kali-another manifestation of Goddess Tripursundari as the main Shakti is worshipped. Bihar is also regarded as a very important center of tantric cult and attracts tnatrikas from different parts of India.

In fact it is well accepted fact that energy is a physieal form of matter and this energy is the manifestation of Goddess Tripursundari - the Shakti power and is masculine and feminine of the same reality. In other words the world is the manifestaion of Supreme Shakti and Shiva.

In India everywhere the concept of Shakti cult has influenced the religous-minded people and nurtured since time immemorale by the great sanits and sages, Mother Goddess has been taken as Para Shakti - the supreme enrgy, Cit Shakti - consciousness and Adya Shakti - Primordial Shakti. Great saints and sages have cultivated Her unique manifestation.

The ultimate reality is taken as the female Goddess. She creates this world from within Herself, protects it and finally destroys to start again. The philosophy behind all this myth is the truth that the energy of consciousness is the ultimate reality behind the uiverse. shakti is taken as pleasing than all the pleasant things supreme, beyond the high and the great knowledge and is suprerior to heaven– which lies at the feet of Divine Mother. She centers on the ultimate reality Shakti cult in the form of compassion, love and protection, which is associated with the idea of Mother, She is older than Bhrama, Rudra, and Vishnu and is Goddess of wisdom. The three vedas, three fires, three energies, three worlds and whatever in this world is threee-fold belongs to Her. She is triple natured because she has the nature of Shiva, Shakti and Atman. She has the three forms, the physical, the subtle and the supreme formless and infinite.

Thus the Great Shakti, Tripursundari is the Supreme Mother and will remain the Supreme Mother for all Hindus. Ultimate reality is one and will remain one. It is Shiva and Shakti. She is inseparable from Shiva.

Hymyu in Praise of Goddess Tripursundari :

The most inspiring devotional hymn, which occupies unparalleled position amongst the hymns addressed to the Goddess, is "Saundarya Lahri" which means the wave of bauty. It also forms the fundamental text of Shakti cult that propagates the worship of the Goddess. In other words it is the universally accepted and authoritative book on Tantrik work. The auother of this exceptional work is Sri Śankarapada popularly known as Sri Śankara, the great genius vedantic preacher and supposed to be than Isvara incarnate. He was born at Kaladi (Malabar). It's believed that Sri Sankara disappeared once from the earth for some period and paid a visit to the abode of Lord Shiva as a mendicant. There on a wall he saw this great hymn wirtten. He began to memorize the hymn but oculd memorize only first forty-one verses before Ganesha; son of Lord Shiva began rubbing it from below. In the place of what had been erased Sri Sankara after he returned added fifty-nine verses from his side to complete the hyman, which was later published in the form of a book. The first forty-one of these forming "Anand Lahari" it encompasses the supremacy of Divine Mother. The next fifty-nine verses constitute "Saundarya Lahari" - hymn of rare excellence gives description of the physical or the supremely beautiful form (sthūlarūpa) of Goddess Tripurundari. Besides it gives an exposiiton of Agamas and Tantras having bearing on Shakti, the creative enregy and

governs the Universe.

Anand Lahari is recognized as ancient and authoritative work on the essence of her external diagramamatic symbol called the Sri Yantra and also unveiled the mystic aspect of Sri Yantra. It deals with the internal worship of the supreme goddess as Para-Shakti or creative energy? and awakening of there are innumerable commentaires by different authors on these hymns. These commentaries are very useful for the study of secrets of Tantra and Agams. The verses given are in praise of the Goddess and exhibit the higehst hights of imagination and remarkable devotional fervor. The verses contain various mantras along with Yantras for worship of the Goddess and for the attainment of various Siddhis or powers. Study of "Ananda Lahari" daily in the morning will be of a great help to the devotee in spiritual progress. After Performing your Nitya karma read Ananada Lahiri with extreme faith and devotion. If one is not able to read all the verses daily read at least minimum of one verse regularly without fail.

SELF OR TRUE KNOWLEDGE

— By V.N. Jotshi (Bhat)

In present day context the meaning of knowledge is treated as conceptual knowledge as actually this is gathering information for further use. Whatever is experienced or whatever is heard from others gets accumulated in our mind, and whenever occasion arises we use it. This is mere information regarding various matters. It does not touch one's being.

To accumulate information about God and to know God directly are two different things. Those who are busy in collecting information about God cannot know him. There is always distinction between accumulation of information and knowledge. To see light and to know about light are two different things. Similarly there is a distinction between real knowledge and conceptual knowledge. Ancient Rishis regarded higher knowledge "para Vidhya" and lower knowledge "Apara Vidhya".

Accumulation of information for self knowledge is a hinderence because it is always wedded to past, while self knowledge is possible only in the present. Having gathered from outside it is known as conceptual

knowledge and is completely separated from the inner knowledgte. The conceptual knowledge is only thinking about reality but this thinking about is not actual reality. We accept the teaching of many scriptures but the real knowledge comes from inner perception. There should be no difference between ourselves and that knowledge. Acquired knowledge makes the knower assertive but true knowledge obliterates the ego of the knower and when he is completely empty of his ego, then only the truth unfolds self to him. We have to die to live. It is said, "He Saveth life who loseth it."

Sometimes question arises whithin our mind what am I? It is knowledge of movement of our conscious and unconscious mind. By constant awareness of what one does, feels, or think, one can find out what one is i.e. 'Self Knowledge'.

Awareness means to be alive internally and externally otherwise life is only like a dream. Constant awareness eliminates all thoughts and gives a feeling of quietness. Wakeful awareness is self consciousness which in other words is true ultimate Reality.

"Shrimat Bagwat Gita Says :-

(Yogi awakes what appears night for others.

Similarly what appears day to others the same

is night for Muni (Perfect being)

The moment we realize that we are in attentive, we become attentive. To be aware that we are not aware is awareness. In order to attain self knowledge we must live in relationship and not in isolation. It is one's reactions to all objects, things and persons which reflect one's real self and it is only by a study of these reactions that one can know one self. We cannot know ourselves in the solitude. Isolation, resistance or suppression are all hinderences to self knowledge. This can be discovered through relationship. The awareness will lead to self knowledge which opens the gate to the ultimate reality. In the course of time he is bestowed with love, compassion, charity, etc. on its own without any effort. Therefore one lives in bliss, peace and tranquility continuously.

Acharya Utpal-Deva in Sivas-Totrāvalī has said :-

('O Lord' like others Let me be engrossed in worldly pleasures as elastically as I wish. But with a condition that all such pleasures should appear to me embedded in you, so that my thought construct in these

pleasures is totally removed)".

What is the use of knowing about everything else when we do not know who we are. It is said without understanding ourselves the search of so called reality is an escape from ourselves. Without self knowledge the God that we seek is the God of illusion and illusion inevitably brings conflict & sorrow.

Yogis do not view their understanding as different from the Supreme Principle their true inner nature. The inner principle, with its own vibraton arises as one' limited understanding gives an object definite characteristics which are also limited. This all is the result of the vibration of consciousness as Jñāna Śakti. (ज्ञानशक्ति)

Jñāna Śakti is a vibration of consciousness, the result of its play is also not different from consciousness. When the vibration becomes limited, objects are perceived with limited vision. This understanding is called Grāhya Grahaka Bhāva-(ग्राह्य-ग्राहक भाव)awareness of the subject object relationship. Constant vibration of the perceived actually are not different from the perceiver.

A person should seek his own self and understand the world. He should know God who permeates the forms of the world. When he understands & knows his own self all his old impressions subside. He never feels 'I am' different from God. He experiences the entire universe as being filled with supreme consciousness. This kind of understanding is the true nature of knowledge. It is said, "To know God is to become God" Awareness is the reality of everything. Having differentiated knowledge, is bondage.

Knowledge that is inherent in our conscious lives is limited knowledge. real knowledge being unlimited and undifferentiated and identical with consciousness is the essence of reality. Hence is defined as Self / True Knowledge.

SOME UNFORGETTABLE MEMORIES

– By Mrs. Usha Kak

Lal Sab, this is how I knew Swamiji from my childhood days. As a child as and when we used to go to Srinagar from Jammu, I used to be a regular visitor to Swami ji's Ashram along with my parents Late Sh. Shambu Nath Ji & Mrs. Lakshmi Ji Mattoo. I was very fortunate because Grand mother Jigri (Samp Kuj) was Swami ji's eldest sister. This gave me some latitude in the Ashram. I could play in the compound & watch Lal Saab tending to his lawns, fruit trees and supervising other Ashram activities.

Since my childhood Swami Ji has bestowed me with his divine grace and i can feel his helping and guiding hand even today. It is his grace only that I am able to share some of my experiences with You.

On one of my several visits to Ashram as a Child Swami Ji asked me to get drinking water from the Jharna. As I stood near the jharna trying to fill the water, I was terrified to see a big snake crawling between my legs. I was so shocked that I could not even shout for help. Suddenly, out of nowhere Swami Ji appeared & lifted me to safety.

During my college days, I underwent an appendicites operation at Jammu. Some complications developed 3 days after my operation. Some of the stitches gave way. I did not realise anything was amiss until the compounder came for my daily dressing. As he removed the bed sheet, I saw blood allover & went into the state of shock, I could not move my limbs or talk, but I could very well hear & see everything going around me. Specialist doctors were called for but they all failed in their efforts to cure me.. Then my maternal grandfather Pt. Raghunath Ji Kotru went to Swami Ji's Ashram to beg for my health. Swami Ji gave him some prasad for me. Again Swami Ji's divine grace came to my rescue. As soon as the prasad was given to me, I became normal.

During the days of my first pregnancy I was in Sirinagar. I used to often visit Ashram to seek Swami Ji' blessings. On one such visit during my ninth month, I was asked by Swami Ji to lift a heavy stone & put it on the other side of the lawn. Jigri, Swami Ji's elsest sister, who was also present got alarmed & pleaded that how could I lift the stone in such a condition. Swami

Ji looked at her & smilingly said "Don't worry, it will help her from operation at the time of child birth". I immediately got up, lifted the stone as desired & put it on the other side. A few days after the incident, I had to be admitted in the nursing home under the care of Dr. Girja Dhar due to some complications. Even on the second evening when things did not improve Dr. Girja said we will have to do caesarean. Remembring what Swami Ji had said my cousin was immediately rushed to Ashram at 10.00 pm. By the time he returned with (Bhasam-ash powder) given by Swami ji Maharaj I had been prepared for the operation & was being taken to the operation theatre on stretcher. My mother immediately applied the Bhasam on my forehead. After this the ward boys started moving me towards the operation theatre, suddenly the stretcher slipped from the hands of one of the ward boys & I fell down. I was again lifted on the stretcher & finally taken to the operation theatre. Before the operation could begin Dr. Girja Dhar did a final check-up. She was surprised to see that the position of baby had changed By that time anaesthesia cap was also put on my nose. Dr. Girja immediately removed anaesthesia cap & told me that if I could co-operate with her, she would try for a normal delivery. With Swami Ji's blessings I delivered a perfectly healthy baby boy. Swami Ji again came to my rescue & I was saved from operation. This miracle was later on quoted by Dr. Girja in a medical confrence which, as luck would have it, was also attended by my sister-in-law, Dr. Aruna Dhar. There are many such incidents in my life where Swami Ji has showered his blessings & divine grace & each incident has very clearely shown that my Lal Saab was SHIVA INCARNATE. It is my firm belief that even now Swami Ji is with us & guiding & protecting our destiny.

JAI GURUDEV

शिवागमों का विस्तार—प्रतिसंहिता क्रम के दर्पण में

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज के श्रीनगर-
पुस्तकालय की अमूल्य निधि

सृष्टिकाले महेशानः पुरुषार्थ प्रसिद्धये।
विधत्ते विमलं ज्ञानं पञ्चस्रोतोपलाक्षितम्।।

सकलजगन्नियन्ता परमशिव सृष्टि के आरम्भ में जीवों के पर एवं अपर अर्थात भोगमोक्षरूपी प्रयोजन सिद्धि के लिये पञ्च प्रवाहों से युक्त शास्त्ररूपी ज्ञान को उत्पन्न किया। यह ज्ञान पर-अपर भेद से दो प्रकार है। सायम्भुवागम में लिखा है =

अथात्ममल मायाख्य कर्मबन्धनिवृत्तये,
व्यक्तयेच शिवत्वस्य शिवाज्ञानं प्रवर्तते।
तदेकमप्यनेकत्वात् शिवक्त्राम्बुजोद्भवम्
परापर विभेदेन गच्छत्यर्थ प्रतिश्रियात्।।

अर्थात् जीव के साथ लगे हुये आणवादी मलत्रय रूपी कर्मबन्ध की निवृत्ति और शिवत्चाभिव्यक्ति की सिद्धि के लिए पर शिव से ज्ञान की प्रवृत्ति होती है। वह एक ही ज्ञान परशिव के सद्योजातादि पांच मुखों से निकलने के आरण अनेकत्व को प्राप्त होकर परअपर भेद से प्रवाहित होते हैं। कामिकागम के तन्त्रावतार पटल में कहा है कि—

आदावभू द्विधा ज्ञान मधिकारिविभेदतः
परापरेण भेदेन पतिपश्वर्थदर्शकम्।
शिव प्रकाशकं ज्ञानं शिवज्ञानं परंस्मृतम्।
वेदाद्यमपरं ज्ञानं पशुपाशार्थ दर्शकम्।।

सृष्टि के आरम्भ में सर्वज्ञादि गुण सम्पन्न पति और अल्पज्ञत्वादि संपन्न पशु, यह द्विपदार्थदर्शक ज्ञान आधिकारिभेद से परअपर नाम से दोप्रकार का हुआ जो ज्ञान पतिपद वाच्य पर शिवस्वरूपका बोधक है वही पर (पराविद्या) है, जिसका कि कामिकादि वातुलान्त शिवागमों में वर्णन है और जो पशु पाशादिका ज्ञान करता है वह ऋग् आदि वेदों में वर्णित ज्ञान अपर (अपरा विद्या है। इस प्रकार पर' और अपर रूपी वेदागम एक ही काल में परशिव के मुख से निकले हैं इनविद्याओं की उत्पत्ति के विषय में ईशान शिव गुरु जी अपनी 'पद्धति' में इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं-

परैः शिवादिभिर्दिव्यैरागमैः पाशमोचकैः
विशिष्टभोगविभव शिवत्वफलदायिभिः।

अपरैरपि वेदाद्यैरागमैः सुमुखोद्गतैः
स्वर्गादि फल सिद्धयर्थे पशुज्ञान प्रकाशिकैः।।
सशिवः स्वमुखो द्भूतैरागमै स्तु परापरैः।
अनुगृहणाति हि जगद् भोगमोक्ष प्रसिद्धये।।

जीवों के कल्याण के निमित्त ही इन आगमों का उपदेश हुआ है, पर नामक यह शिव ज्ञान

शैवं पाशुपतं सोमं लाकुलं च चतुर्विधम्
तेषु ज्ञानं परं सौम्यं रौद्रं पाशुपतादिकम्।।
शैवंपुनश्चतुर्भेदं वामदक्षिणमेव च
मिश्रं चैवतु सिद्धातं तेषुसिद्धान्तमुत्तम्
अष्टाविंशति भेदेन सिद्धान्तं श्रृणु तत्वतः।।

इस सुप्रभेदागम क्रियापाद के प्रश्नविधि पटल के वचनानुसार शैव पाशुपत सोम और लाकुल नाम से पर नामक शिवज्ञान चार प्रकार का है इनमें से शैव बहुत ही सौम्य है, शेष पाशुपतादि रौद्र है शैव में भी वाम और दक्षिणमिश्र और सिद्धान्त ये चार भेद हैं जिनमें से सिद्धान्त ही सर्वश्रेष्ठ है यह सिद्धान्त भी अठ्ठाईस प्रकार का है -

नादरूपतया पूर्वं शिवेनाविष्कृतं पुनः।
सदाशिवादि रूपेण तेनैवासौ पृथक् पृथक्।।
कामिकादि प्रभेदेन शिष्येभ्यः संप्रकाशितः।
अष्टाविंशति संख्योऽसौ सिद्धान्त इति संज्ञितः।।

इस शिवागमोक्ति के अनुसार शिवजीने अपने में जो नित्य सिद्ध विमल ज्ञान था उसे पहिले नादरूपसे प्रकट किया और फिर उसी ज्ञान को सदा शिव होकर, अपने सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान - इन पांच मुखों से प्रणवादि दस शिव और अनादि इत्यादि अठारह रुद्र इस प्रकार अठाईस शिष्यों को कामिकादि अठाईस आगम संहिताओं का उपदेश दिया। इन्ही आगमों को सिद्धान्त कहते है। अब यह प्रश्न है कि सदा शिव ने पञ्च मुखों में से किस किस मुख से किस किस शिष्य को उपदेश दिया। सर्व प्रथम कामिकागम के तंत्रावतार पटल में वर्णित -

ईशानवक्त्रादूर्ध्वस्थात् ज्ञानंयत्कामिकादिकम्।
तदेव युगभेदेन सद्योजातादि मूर्तिभिः।।
दशाष्टादशभेदेन शिवरुद्रावतारकैः।
षट्ष्टिभिः क्रमेणैव कथितंतु शिवाज्ञया।।

इत्यादि प्रमाणों से मालूम होता हे कि शिवजी के ऊर्ध्व में जो ईशानमुख है

उससे निकलाहुआ कामिकादि शिवज्ञान युगभेद से सद्योजातादि के अवताररूपी दसदस जनों के तीन तीन दलों के और अठारह अठारह के दो दलों को अर्थात् कुलमिलाकर ६६ व्यक्तियों को प्राप्त हुआ। अब इन आगमों की उत्पत्ति काभी क्रम बतलाया जाता है कि किस किस मुख से कौन कौन, आगम निर्गत हुआ। उत्पत्ति इस प्रकार है

सद्योजातमुखाज्जाताः पञ्चाद्याः कामिकादयः।
वामदेव मुखाज्जाता दीप्ताद्याः पञ्चसंहिताः॥
अघोरवक्त्रादुद्भूताः पञ्चाथ विजयादयः
पुंवक्त्रादथसंभूताः पञ्चाथो रौरवादयः।
ईशानवदनाज्जाता' प्रोद्गीद्यष्टसंहिता॥

परशव के सद्योजात मुख से – कामिक योगज, चिन्त्य कारण ओर अजित, वामदेव मुख से – दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र आदि, अघोरमुख से विजय,विश्वास स्वायंमुव, अनल, और वीरः तत्पुरुष मुख से रौरव मुकुट, विमल चन्द्रज्ञान, ओर बिम्भ, था ईशान मुख से प्रोद्गीत ललित सिद्ध सन्तान सर्वोत्तर पारमेश्वर किरण और वातुल इस प्रकार से अठ्ठाईस आगम निर्गत हुये। इस सिद्धान्त शास्त्र का उपदेश पहिले शिवभट्टारकों को मिला था। स्वायंभुव में कहा है'

सृष्टयनन्तरमेवेशः शिवान्स्मृत्वा दशात्मजान्
ज्ञानमेकं विभज्यैव तेषां तत्संख्ययावदत्।
प्रणवः स्यात्शिवज्ञानं मुक्तिमार्ग प्रदर्शकम्।
एकमेव शिवज्ञानं विभिन्नं दशधा पुनः॥

सृष्टि के अनन्तर इच्छामात्र से ही शिवजी ने प्रणय, शुद्ध, दीप्त, कारण, सुशिव, ईश, सूक्ष्म, काल, गणेश, आरे अंशु इन दस शिवभट्टारकों को उत्पन्न किया और इन्हें नाद रूपी मुक्तिदायी शिवज्ञान का दस भागों में विभक्त करके बोध कराया। पुनः अपनी शक्ति से अनादि रुद्र प्रभृति अठारह जनों का सृजन कर उसी शिवज्ञान को अठारह प्रकार से उन्हें दिया।

द्रविडदेश के आमर्दक मठाधीश सकलागमज्ञान निधि श्री त्रिलोचनशिवाचार्य जीने अपनी सुप्रसिद्ध 'सिद्धान्तसारावली मे' भी इसी विषय का प्रतिपादन किया है। वह इस प्रकार है –

संकल्पाद्दशचात्मनः प्रथमतः सृष्ट्वा शिवान् केवलान्
तेषां मंत्रपति प्रबोध परतो ज्ञानं यथाभज्य तत् ।
साक्षाद्देव उपादिदेश च शिवः शैवास्तथाचागमाः
रुद्रा श्चाष्टदशावबोध्य कथिता स्तैरागमाश्चापरे॥

इसके अतिरिक्त सर्वात्मशम्भु शिवाचार्य जीने भी अपनी -शैवसिद्धान्त प्रदीपिका' में इस विषय का वर्णन किया है उसमें विशेष बात यह हे कि एक एक संहिता का परिमाण कोटि संख्यक बताया गया है। परन्तु संख्या के विषय में मतभेद है। नीचे लिखी तालिका से यह भी पता लगेगा कि इन २८ आगमों में से किस किसने किस किसका अध्ययन किया॥

आगम	अध्ययन करने वाले सद्योजात मुखीय
कामिक	प्रणव त्रिकल , हर
योगजागम	शुद्ध , बाहु, विभु
चिन्त्यागम	दीप्त, योग, अम्बिका
कारणागम	कारण, सर्यरुद्र, प्रजापति
अजितागम	सुशिव, शिव, अच्युत
	वामदेवमुखीय
दीप्तागम	ईश, त्रिमूर्ति हुताशन
सूक्ष्मागम	सूक्ष्म, वैश्रवण, सुप्रभञ्जन
सहस्रागम	कालरुद्र, भीम, धर्म
अंशुमदागम	अंशु, उग्र, औरस
सुप्रबोधागम	गणेश, महासेन, शशी
	अघोर मुखीय
विजयागम	अनादिरुद्र, अनादि परमेश्वर
निश्वासागम	उदय, गिरिजा
स्वायम्भुवागम	निधनेश, स्वयंभू
अनलागम	व्योम, हुताशन
वीरागम	तेजस्वन्त प्रजेश
	तत्पुरुष मुखीय
रौरवागम	सुब्रह्मण्य, नन्दीश्वर
मुकुटागम	शाशाख्य, महादेव
विमलागम	सर्वात्मक वीरभद्र
चन्द्रज्ञानागम	अनन्त बृहस्पति
बिम्बागम	प्रशान्त दधीचि
	ईशानमुखीय
प्रोद्गीतागम	शूली, कच

ललितागम	यम ललित
सिद्धागम	इन्द्र चण्डीश
सन्तानागम	वसिषृ शशपाय
सर्वोत्तरागम	सोम नृसिंह
परमेश्वरागम	देवी, बोधन
किरणागम	देवपिता, संवर्तक
वातुलागम	शिवरुद्र महाकाल

इस प्रकार पहिले के दस आगमों का तीन तीन महापुरुषों ने और बाद के अठारह आगमों का दो दो - ने अध्ययन किया। कुल २८ आगमें और ६६ अध्ययन करनेवालों का हिसाब भी ठीक ठीक बैठ जाता है यह ही उपदेश महौघक्रम और प्रतिसंहिताक्रम, से दो प्रकार का है।

परमेश्वरोपदिष्ट एक एक संहिता का ही पहले प्रणवा दि पुरुषों ने, उनसे त्रिकलादि महापुरुषों ने, और तदनन्तर उनसे हरादि महापुरुषों ने श्रवण किया, और इस प्रकार श्रोताओं की अधिकता के कारण इनकी, अनेकों शाखाएँ होगई हैं। इसीसे यह महौघक्रम है। सदाशिव ने शुद्धाध्ववासीप्रणवादिदस शिवों और, अनादिरुद्रादि अठारह रुद्रोंका नादरू पसे, आविर्भूतज्ञान का छन्दोबद्ध उपदेश और ज्ञान, ज्ञेय, अनुष्ठान अनुष्ठेय, अधिकारीसाधननामक षट् पदार्थों के अनुसार एक एक व्यक्ति को एक एक संहिता का पृथक पृथक् उपदेश दिया। इसी कारण इसका नाम प्रतिसंहिता क्रम है।

इन २८ आगमें की प्रत्येकसंहिता उपागमनाम की विविधशाखाओंसे युक्त होकर २०८ प्रकार की हो गई। इन वैदिक शैवसंहिताओंकी कुल ग्रंथसंख्या १ परार्ध १ शंख १ पद्म १ अर्बुद १२१ कोटि ८२ लाख ५३ हजार है। हम आशा करते हैं कि इनमोक्षसाधनीभूत संहिताओं के अध्ययन और मनन से मानवसमाज असली कल्याण को प्राप्तकरेगा इति शिवम्।

(सुश्री प्रभादेवी के सौजन्य से)

स्मृति के स्वर्णिम क्षण

श्री विद्याधिपति रचित "मनस्तोत्र" के तीन रत्न

—सुश्री प्रभादेवी

(१)

ये यौष्माके शासनमार्गे कृतदीक्षा, संगच्छन्तो मोहवशाद्विप्रतिपत्तिम्।
नूनं तेषाम् नास्ति भवद्धानुनियोगः, संकोचः किं सूर्यकरैस्तामरसानाम्॥

जो जन त्रिक-शासन में दीक्षित हो कर, मोह के कारण अन्य मत मतान्तरों में उलझ जाये, समझना चाहिये वह त्रिक-शास्त्र में दीक्षित हुआ ही नहीं है। जैसे यदि भास्कर के उदय होने पर भी कमल न खिले तो समझना चाहिये सूर्य का उदय ही नहीं हुआ है। कहने का भाव यह कि एक बार पारमेश्वर शास्त्र में जो मुमुक्षु पदार्पण करता है वह फिर अन्य मत-मतान्तरों के भूल - भुल्लयों में नहीं उलझता॥

(२)

ज्ञातृज्ञेया धातृपदस्था अपि सन्तो ये त्वन्मार्गात्कापथगास्तेऽपि न सम्यक्।
प्रायस्तेषां लैङ्गिकबुद्ध्यादिसमुत्थो मिथ्याबोधः सर्पवसादीपजकल्पः॥

जोअन्य मतानुयायी हैं उन्होंने जो ज्ञेय परमेश्वर है उसे स्व मतानुसार जान लिया। इस भंति वे धाता-परमेश्वर के पद में आकर भी आप के स्वात्ममार्ग से भटक गये हैं। उनकी वह लैङ्गिक बुद्धि — परिमित बुद्धि से उत्पन्न हुई मिथ्या बुद्धि का प्रभाव ठीक वैसे ही होता है जैसे सांप की चर्बी से जलने वाली दीपक के प्रकाश में काम करने वाले की दशा होती है। अर्थात् उसे उस दीपक के प्रकाश में चारों ओर सांप ही सांप दिखांई देते हैं। इसी भांति अन्य द्वैत दर्शनों के अनुयायियों को चारों ओर द्वैत का ही साम्राज्य दिखाई देता है। वह अद्वैत - पथ से कोसों दूर हो जाते हैं।

तस्माद्विद्धं सूतकमुख्येनन ताम्रं तद्यद्भूयः स्वां प्रकृतिं नो समुपेयात्।
नो तैः पीतं भूतलसंस्थैरमृतं - तद्येषां तृट्क्षुद्दुःख विबाधाः पुनर्नैव॥

जैसे सुनार तांबे के टुकड़े को सोना बनाने के लिए विशेष प्रकार के पारे से बांधकर सोना बना लेता है। फिर भरसक प्रयत्न करने पर भी वह तांबे का टुकड़ा, तांबा नहीं बन पाता सोना ही बना रहता है। इसी भांति जो मुमुक्षु एक बार त्रिकमार्ग का अनुगामी बन जाता है वह फिर भूल कर भी अन्य मतों के चुंगुल में नहीं फंसता।

इसी तरह संसार का प्राणी यदि कभी अमृत पी लेता है तो उसे भौतिक तृषा पिपासा बाधित नहीं करती तथा भूख नहीं सता सकती। कहने का तात्मर्य यह है कि प्रबुद्ध अप्रबुद्ध की भांति व्यवहार करने पर भी प्रबुद्ध ही बना रहता है। कारण यह कि

वह हृदय से वीत-राग बना होता है उसे सांसारिक प्रलोभन लुभा नहीं पाते।

स्मृति का बिशाल साम्राज्य भी अनूठा होता है। बहुत वर्षों की बात है । मैं नव या दस वर्ष की थी। मैं अपने गुरुदेव श्री ईश्वर - स्वरूप जी के पास यदा-कदा जाया करती थी। महाराज जी मुझे ऊपर - वर्णित इन तीन श्लोकों को अपने मधुर स्वर में बोल कर कंठस्थ कराते थे। मैं बाल सुलभ होने के कारण इन श्लोकों को उठते बैठते गुनगुनाया करती थी। कालान्तर में शक्तिपात वश जब मैं महाराज जी के आश्रम में ही रहने लगी तो मैं ने इन श्लोंकों को तन्त्रालोक में पढ़ा। सच मानिये मैं प्रसन्नता से फूले न समाई। ऐसा लगा मानो इन श्लोकों की प्रत्यभिज्ञा हो गई। गुरुदेव ने मुझे सचेत किया और कहा "मैंने तो तुम्हें बचपन में ही इन श्लोकों से परिचित कराया था। हमें उसी समय ज्ञात था, तुम ने तन्त्रालोक का आगामी जीवन में अध्ययन करना है। मैंने गुरुदेव को मन ही मन में प्रणाम किया तथा पूर्ण रूप से समझा कि ये त्रिकालदर्शी सन्त हैं। इन की सन्निधि में रह कर जीवन में नवीन प्रकार का प्रोत्साहन मिला, सान्त्वना मिली और साथ ही प्रभु पर अटल विश्वास रहा। अभिनवगुप्त जी के शब्दों में संसार का आकार स्फुटित हो गया :-

संसार जीर्णतरुमूलकलापकल्प-संकल्प सान्तरतया परमार्थ वह्नेः।
स्युर्विस्फुलिङ्गकणिका अपि चेत्तदन्ते देदीप्यते विमलबोधहुताशराशिः।।

इस श्लोक का अर्थ डा. परमहंस मिश्र जी ने हिन्दी तन्त्रालोक में अति सुन्दर शैली में किया है वह लिखते हैं : - संसार एक ऐसा वृक्ष है, जो अत्यन्त जीर्ण है। बड़ा ही पुराना पेड़ है यह। पुराने पेड़ प्रायः सूखते ही चले जाते हैं जड़ों की संख्या का कोई ओर छोर नहीं होता। संख्या में बड़ी और सूखी हुई जड़ें वैसी होती हैं, जैसे मनुष्य के अशुद्ध संकल्प। अशुद्ध संकल्प अर्थात् विकल्प । परमार्थ की आग से इसलिये बचे रहते हैं, कि आग से उनका व्यवधान बना रहता है। यदि संयोग वश उस चितिवह्नि की एक छोटी चिनगारी भी उस में पड़ जाय, तो सूखे विकल्पों की राशि को भस्मसात् होते कितनी देर लग सकती है। विमलबोध रूप वैश्वानर-अग्नि की उद्दीप्त ज्वालायें अपने पूरे रूप में देदीप्यमान हो उठती हैं।

अतः प्रत्येक प्राणी को अपने जीवन में तथ्य आनन्द प्राप्ति के लिए भगवद् - परायण रहना चाहिये। इसी मार्ग का अनुसरण करने से पारमार्थिक कल्याण प्राप्त होता है। वह जीवभाव की संकीर्णता को छोड़ कर शिवभाव के अनन्त सागर में आनन्द प्राप्त करके मुक्त हो जाता है।

ॐ नमः शिवाय

शैवदर्शन के वातायन से

प्रो० नीलकंठ गुर्टू

प्रख्या – किसी भाग्यशाली भक्तजन के निजी अंतस् में स्वतःसिद्धरूप में अवभासित होनेवाली ईश्वरीय उत्कर्ष की जानकारी।

उपाख्या – इसी जानकारी को समाज के अधिक से अधिक भक्तजनों तक भी पहुँचाने की तीव्र इच्छा।

शून्य-ब्रह्मवादी – यह वेदान्तदर्शन की एक प्राचीन शाखा का नाम है। उन विचारकों की मान्यता यह थी कि विमर्श-शक्ति से रहित और 'चिन्मात्र' नामवाला तत्त्व ही वास्तविक परब्रह्म है, उसी तत्त्व का साक्षात्कार प्राप्त कर लेना सारी साधनाओं का चरम लक्ष्य है।

प्रतिक्षेपण – उत्तरपक्षी की शंकाओं या प्रश्नों का उचित समाधान प्रस्तुत करने को प्रतिक्षेपण कहते हैं।

भव – भव शब्द से ऐसे संसारभाव की अभिव्यंजना होती है जिसमें प्रतिसमय जन्म-मरण का तांता बंधा रहता है और जिसमें राग, द्वेष, ईर्ष्या इत्यादि पाशविक वृत्तियों का ही भोल भाला रहता है।

सम्भ्रान्त जन – लोंगों का वह वर्ग जो पारमार्थिक आत्मभाव को सर्वथा भूलकर भ्रमात्मिका प्रतीति का शिकार बना रहता है।

दृश्यानुपलब्धिः – परमात्मा की तिरोधान-शक्ति के कुप्रभाव से सच्चे स्वात्मस्वरूप का साक्षात्कार न मिल पाता हो तो ऐसी अवस्था को दृश्यानुपलब्धिः कहते हैं।

प्रत्यक्षात्मवादी – शैव-दर्शन, वेदान्त-दर्शन इत्यादि आत्मपरक दर्शन ग्रन्थों को प्रत्यक्षात्मवादी संज्ञा दी गई है, इसके अतिरिक्त बौद्ध चार्वाक इत्यादि दर्शनों को अनात्मवादी' दर्शन कहा जाता है।

साधक-तर्क – जिस प्रकार के तर्क से अपने पक्ष की मान्यताओं को पुष्टि मिलती हो उसको साधक तर्क, और जिस तर्क से अपने पक्ष को कोई पुष्टि न मिलती हो उसको बाधक-तर्क कहते हैं।

अभिलाप – किसी भी प्रकार के सम्भाषण या पारस्परिक वार्तालाप को अभिलाप अथवा शब्दन कहते हैं। वैखरी-वाणी से लेकर सब से उत्कृष्ट-वाणी परावाणीतक का

सारा आन्तरिक एवं बाहरी व्यवहार अभिलाप से ही चलता रहता है। सारी ज्ञातृताएं जैसे स्मृति-ज्ञान इत्यादि अभिलाप ही माने जाते हैं।

प्रशमितभव – जिस भक्तजन ने सर्वोत्कृष्ट भूमिका पर आरूढ़ होने से पहले अपने अन्तस् में वर्तमान सारे पाशविक संस्कारों का परिपूर्ण बहिष्कार किया हो उसको प्रशमितभव प्रमाता कहते हैं।

अंतः स्फुरितेच्छा – कोई भी क्रिया आरम्भ करने से पहिले प्रमाता के अन्तस् में जो तद्विषयक सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पंदन हो जाता है उसको 'अंतः स्फुरितेच्छा' कहते हैं यही सूक्ष्मातिसूक्ष्म इच्छास्पन्द दूसरे क्षण पर स्थूल बनकर 'बाह्यस्पन्दन' का रूप धारण कर लेता है।

कायस्पन्द – बाहरी शरीर के स्थूल स्पन्दन को 'कायस्पन्द' कहते हैं।

दैपम्-अर्चिः – दीप से निकलने वाले प्रकाश की किरणों को दैपमर्चिः कहते हैं।

संकेतः

किसी प्राचीन शैव आचार्य ने निम्नलिखित पद्य में इस 'दैपम्-अर्चिः' शब्द की बहुत सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है और प्रमातृभाव के रहस्य को बहुत सुन्दर ढंग से समझाया है। श्लोक बहुत मधुर है कृपया आप भी पढ़िए –

प्रमातृत्वं भातं यदपि च शरीरादिनिवहे
तथाप्येतदद्वारा स्फुरति ननु चिन्मात्रनमसः।
गृहद्वारैर्ज्योतिः प्रसरति यदेतद्बहिरिदम्,
गृहान्तःस्थस्यैव भवति खलु दीपस्य नियतम्।।

श्री विद्यावतार विरचितं

शिवाष्टकम्

प्रस्तुत 'शिवाष्टक' रचना ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज के श्रीनगरस्थित पुस्तकालय से प्राप्त हुई है। शैवदर्शन के तथ्यों से जुड़ी हुई होने से इसका मालिनी में प्रकाशित करना उचित समझा। इस नवीन रचना को पढ़कर आप लाभान्वित होगें ऐसी पूर्ण आशा है।

अनुवादक प्रो० मखनलाल कुकिलू

ऊँनमः शिवाय

(१)

योन्तश्चरन् प्राणभृतां हृदब्जे धुनत्यभीक्ष्णं भ्रमरायमानः।
श्वश्रंश्च शब्दादि परागमुच्चैः नमोस्तु चैतन्य शिवाय तस्मै।।

जीवधारियों के हृदयकमल में विचरण करनेवाले, भंवरे की तरह निरन्तर गुंजायमान और शब्द स्पर्श रूप रस व गन्ध रूपी पुष्प पराग को पूर्ण रूप से सेवन करने वाले चैतन्यपूर्ण शिव को प्रणाम हो॥

संकेत –

इसमें शिवसूत्र के "चैतन्यमात्मा" सूत्र का ही प्रतिफलन है।

(२)

स्व दीधितीनां करणेश्वरीणां चिदर्कमूर्तिः समुदेति मध्ये।
ग्रासी करोत्येष हठात् त्रिलोकी नमोस्तु चैतन्य शिवाय तस्मै।।

करणेश्वरियों अर्थात् खेचरी, गोचरी, दिक्चरी और भूचरी चक्र के स्वात्म उद्भूत रश्मि जाल के मध्य में चित् सूर्य की झलक (जब) उदित होती है तो यह भूः भुवः स्वः नामक तीनों लोकों को हठपूर्वक ग्रास करती है। एवंगुणविशिष्ट चैतन्य पूर्ण शिव को प्रणाम हो।

संकेत –

इसमें शिवसूत्र के "शुद्धविद्योदयात्चक्रेशत्वसिद्धि" सूत्र की प्रतिच्छाया है। सद्गुरु महाराज कहा करते थे कि चितसूर्य के उदित होने के समय –

मृत्युं च कालं च कलाकलापं विकारजातं प्रतिपत्तिसात्यम्।
ऐकात्म्य नानात्म्यवितर्कजातं तदा स सर्वं कवली करोति।।

अर्थात् स्थूल विनाश (मृत्युं - जब दाह संस्कार होता है), सूक्ष्मविनाश सूक्ष्म

विनाश उस समय से होता है जब प्राणी जन्म लेता है क्योंकि सांस लेने और छोड़ने से उसका सूक्ष्म विनाश होता है।)

क्रिया विनाशं कला कलापं – सारी क्रियाओं का – अच्छी या बुरी – समूह उसका लोप) जीवन में आने वाले परिवर्तन (विकार जातं - भूख - प्यास आदि समूह)

विषय ज्ञान के साम्य (प्रतिपत्तिसात्म्यम् - अच्छे या बुरे विषयों का ज्ञान स्वामी जी महाराज ने कश्मीरी भाषा में इसका अर्थ इस प्रकार किया था "पअरजअन्य हुन्द म्युल करुन) शुद्ध विकल्पों का समूह (ऐकात्म्य वितर्क जातं - अद्वैतवाद सम्बन्धी सारे विकल्पों का वाद विवाद) नम्नात्य्य वितर्क जातं भेदरूप विकल्पों का समूह अर्थात् द्वैत वाद विषयक वाद विवाद, सर्वं - सबकुछ, स - वह साधक, तदा - चित् सूर्य की झलक के उदित होने पर, कवली करोति - (भूः, भुवः, स्वः को) ग्रास करता है॥

(३)

स्वप्राणवह्नि त्रिशिखेन बद्धा विरिञ्चिमुख्यान् अथ कारणेश्वरान्।
प्रशान्त कोपः परधाम्न्युदेति नमोस्तु चैतन्य शिवाय तस्मै॥

क्रोध में आकार जो ब्रह्मा विष्णु आदि तीन कारणों के अधिपतियों को अपने प्राणाग्निरूपी त्रिशूल से बांधकर, फिर क्रोध के शान्त होते ही परधाम में उदित होते हैं उस चैतन्य पूर्ण शिव को प्रणाम हो।

संकेत –

यहां श्री वाजसनेया संहिता के इस कथन की ओर संकेत मिलता है कि –

महाघोरेश्वरी चण्डा सृष्टि संहार कारिका।
त्रिवहं त्रिविधं त्रिस्थं वलात् कालं प्रकर्षति॥

अर्थात् महाघोरेश्वरी काल संकर्विणी भगवती उस समय चक्र का संहार करती है, जो तीन रूपों अर्थात् इडा, पिंगला सुषुम्ना में प्रवाहित है, जो प्राण, अपान और समान में अवस्थित है और जो भूत भविष्यत् और वर्तमान में विद्यमान है॥

(४)

त्रितीय नेत्रात्मक मध्य धाम विकास वह्नि द्रुत सूर्य चन्द्रः।
योगी समाप्नोत्यमरीश्वरत्वं नमोस्तु चैतन्य शिवाय तस्मै॥

तृतीय नेत्रस्वरूप प्रस्फुटित मध्यधाम से उद्भूत अग्निसे सूर्य और चन्द्र के प्रकाश को क्षीण करके अर्थात् प्राण और अपान वायु को क्षीण करके जिस योगी ने अमरेश पद को पाया है उस चैतन्यरूप शिव को प्रणाम हो॥

संकेत –

इसमें शिवसूत्र के 'शिवतुल्यो जायते' इस सूत्र की ओर संकेत किया गया है।

तस्मात् नित्यं असंदिग्धं बुद्धा योगं गुरोर्मुखात्।
अविकल्पेन भावेन भावयेत् तन्मयत्वतः॥
यावत् तत् समतां याति

अर्थात् अमरेश पद प्राप्ति के लिए साधक प्राणापान अभ्यास की तीव्रता से तुर्यातीत पद को प्राप्त कर संशयहीन होके सद्गुरु के मुख से शैवयोग को जानकर निर्विकल्प भाव से तन्मय होके उस संवित् तत्त्व की भावना करे जब तक वह शिव के समान हो जाये।

(५)

कन्दादिचक्रोदित देवतानां प्रियोऽपि सन् प्राणशिखादिशायी।
योऽपान वृत्त्या मजते पुरस्तात् नमोस्तु चैतन्य शिवाय तस्मै॥

प्राणशिखादिशायी होके जो कन्दस्थान मूलाधार आदि छः चक्रों से उदित हुए देवताओं का अभीष्ट होते हुए भी अपान वृत्ति से समीपस्थ होके उनका सेवन करता है उस चैतन्य रूप शिव को मेरा प्रणाम हो॥

संकेत –

कन्द – मेढ्र और मूलाधार के मध्य का स्थान।

आदिस्थान से तात्पर्य है मूलाधार अनाहत आदि षट्चक्र जिनसे गुजर कर कुण्डलिनी की विद्युत शक्ति प्रसरित होती है।

अपान – प्राण पांच है। प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान।

(६)

काय श्मशानान्तरगो यएष कापालिकः स्वात्म विमर्शदीप्त्या।
प्लुष्टा चितौ तत्त्वगुणानुदेति नमोस्तु चैतन्य शिवाय तस्मै॥

श्मशान भूमि पर पड़ी निर्जीव काया में वामाचारी बनके (कापालिक रूप से) स्वात्म विमर्श की लौ से जो चिता पर भस्मीभूत हुए ३६ तत्त्वों को पुनः सक्रिय करता है, उस चैतन्य स्वरूप शिव को प्रणाम हो॥

संकेत–

तत्त्व – पृथ्वी तत्त्व से लेकर शिव तत्त्व तक ३६ तत्त्व हैं

(७)

प्राणात्मिका शक्ति रपान शक्ति स्तयोर्द्वयोः पूर्ण कृशात्मनोयः।
मध्येऽपि घोरे शतधान्नमत्ति नमोस्तु चैतन्य शिवाय तस्मै॥ ७॥

प्राण शक्ति और अपान शक्ति दोनों के सेवन करने पर भी जो संपूर्ण रूप से

क्षीण काय होते हुए भी भीषण मध्यधाम में भी अनेक प्रकार से अन्न का सेवन करता है, उस चैतन्य स्वरूप शिव का प्रणाम हो॥

(८)

ऐकात्म नानोभयतात्मरूपा याः कल्पनाः कल्पित देहभाजः।
ता अत्ति यो मध्यमद्याम्न्युदेति नमोस्तु चैतन्य शिवाय तस्मै॥

एकली, दुहरी तथा नाना रूपों वाली जो कल्पनायें शरीर धारियों के साथ साथ रहती हैं, उन सभी कल्पनाओं का मध्यम धाम में विलय और प्रसर भी जो एकसाथ करता है उस चैतन्यस्वरूप शिव को प्रणाम हो॥

(९)

योगेन चैतन्य शिव स्तुतोयः शिवाष्टकेनेति शरीरसंस्थः।
तेनाशु सर्वस्य शिवं करोतु शिवः स्वहृन्मध्यमधाममधामा॥

चैतन्यस्वरूप शिवकोअपने ही शरीर में संस्थित इस शिवाष्टक योग से अर्थात् प्राणसंचारी रूप, चित्सूर्य रूप, पर – धामस्थितिरूप, कालाग्निरुद्ररूप, प्राणशिखादिशायी, षट्त्रिंशत् तत्त्व रूप, बहुभोगी रूप, कल्पनासृजनशमनरूप से, जो स्तुति करता है उससे वह शिव समस्त विश्व का शीघ्र कल्याण करे जो अपने ही हृदय के मध्य धाम में सुखासीन है।

– सुश्री प्रभादेवी को सौजन्य से

Whenever you find out what is the real state of Bhairva, you can't find it out, because the real state of Bhairava is in fact the real state of the knower, the perceiver. It is not perceived. When there is desire in you to perceive it, you can perceive it when it comes down to the state of Bhairavi, when you tread on the level of Pārvatī then you are treading on the right path. There is no journey in the field of Bhairava. He is the knower of everything. So he can't be found. That state can only be found when it comes down one step lower, i.e. at the level of pārvatī.

(Svāmī Lakṣmaṇ Joo Mahārāj)

(स्वामी लक्ष्मण जी महाराज के जन्मोत्सव वैशाख कृष्ण द्वादशी पर अर्पित श्रद्धा सुमन)

ईश्वर आश्रम के ईश्वर स्वरूप

–काशीनाथ जाड़

महादेव पर्वत उपत्यका ईश्वर-आश्रम जाज्वल्यमान्
गुप्तगङ्गा सम्मुख ठहरी पाद-प्रक्षालक झील महान्॥

पंखपखेरु गुगू करते सप्तरंगों के पुष्प यहां
टहनियों पर फल सजाकर स्वागत करते विटप यहां॥

भक्तजनों का तांता लगता प्रेम से आता सभी जहान
प्रातः सायं ध्यान से करते सोऽहंसो का पाठ यहां॥

भेद न तेरे सम्मुख कोई शैवी सनातन बौद्ध समाज
ईसाई, सिख यवन जैनी धनी व निर्धन का सर ताज॥

कोख शारदा जन्म लिया है पिता बना है हिंदुस्तान
विश्वबंधुत्व महिमा तेरा यूरोप एशिया पाकिस्तान॥

सत्य अहिंसा पाठ सिखाकर सदा ही रहते भगवद्ध्यान
मानवता के पुंजीभूत तुम मानवता का दिया है ज्ञान॥

प्रेम परस्पर सभी करें अब विश्व में वैर का रहे न नाम
ऊंच नीच का भेद मिटे सब मेरे ''लक्ष्मण'' दो वरदान॥

उदाहरण फिर से यह मेरा देश शारदा-पीठ जहां
ठहरे बनकर यथापूर्ण यह सभ्य संस्कृत लोग यहां॥

जय जय लक्ष्मण परम गुरु हे तुम हो उत्पलदेव समान
कय्यट जल्हण बाण सुशोभित देश में जन्मे शुभ संतान॥

''काशीजाड़'' विनय करता मानवता की दो पहिचान
समय अब शेष है थोडा त्यागुं धर्म के पथ पर प्राण॥

यू-१४२ मंगोल पुरी, न.दि.-१३

ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Srinagar Ashram:
Ishber Nishat,
P.O. Brain,
Srinagar (Kashmir) - 190 021
Tel. : 0194-2461657

Jammu Ashram:
2, Mohinder Nagar,
Canal Road,
Jammu (Tawi) - 180 002
Tel. : 0191-2553179, 2555755

Delhi Ashram:
R-5, Pocket 'D',
Sarita Vihar,
New Delhi - 110 004
Tel. : 011-26958308, 26943307

(1)

Jammu
12th August, 2002

Whole of the Guru Parivar and the members of the Trust, assembled in the Hall, mourned the death of Smt. Shobavati Mattoo, an ardent disciple of our Gurudev Swami Lakshman Joo Maharaj. The gathering observed two minutes silence and prayed to Guru Dev to bestow peace to the departed soul and lead the same to the region of Light & peace to which the same has entered, also to give courage to her near and dear ones to bear this loss.

It was desired that these sentiments be conveyed to the bearieved family.

Sd/–
(S.N. Saproo)
For & on behalf of Ishwar Ashram Trust

(2)

Jammu
8th September 2002

Whole of the Guru-Parivar, on hearing the news about the demise of the mother of Shri Makhan Lal Hangloo just now, assembled in the Hall and mourned the death of this noble lady. They were shocked for not being able to mourn this death at the proper time as nobody had cared to inform the Ashram office about it well in time.

However, though belated, the gathering sat in silence for two minutes and prayed to Gurudev to shower peace to the departed soul and lead it to the region of light and peace to which it just entered and to give courage to the bearieved family to bear this great loss.

It was desired that these sentiments be conveyed to the concerned especially our Guru Brother Shri Makhan Lal Ji,

Sd/–
(B. N. Koul)
Trustee
Ishwar Ashram Trust

(3)

Jammu
01th December, 2002

The whole of Guru-parivar including the Trustees were deeply shocked to learn about the sad un-timely and sudden death of Shri Somnath Thusoo who, not only himself was but all his family members are ardent devotees of Gurudev Swami ji Maharaj.

It is prayed to Gurudev to shower bliss to the departed soul and lead it to the region of light to which it has just entered and also to give strength to the bearieved family to bear this huge loss.

Yours sincerely,
(B.N. Kaul)
Trustee

(4)

Jammu, 02.12.2002

Whole of the Guru-Parivar including the Trust members, were deeply shocked to learn about the death of Shri P.N. Kaul ji, a very gentle soul, who also happened to be the father of one of our Guru-brothers, an ardent devotee of Gurudev.

The Parivar prays to Sadguru Maharaj to shower Bliss to the departed soul leading it to the region of light to which it has now entered and also give enough strength to berived family to bear this great loss.

Sd/–
(B.N. Koul)
Trustee

N.B. : *Similar condolence meetings were held on all the stipulated dates at Srinagar and Delhi Ashrams also and two minutes silence was observed for the upliftment of departed souls. May Sadguru Maharaj bestow on them eternal peace and relieve them from the pangs of life and death.*

MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs.100.00
Price Per Copy : Rs.25.00
Overseas Subscription : US$25.00

All correspondence & subsciption must be sent to the Administrative Office :
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 2553179,2 555755

Information regarding printing & publishing, etc. can be had from Branch Office:
F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044
Phone : 26943307

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज

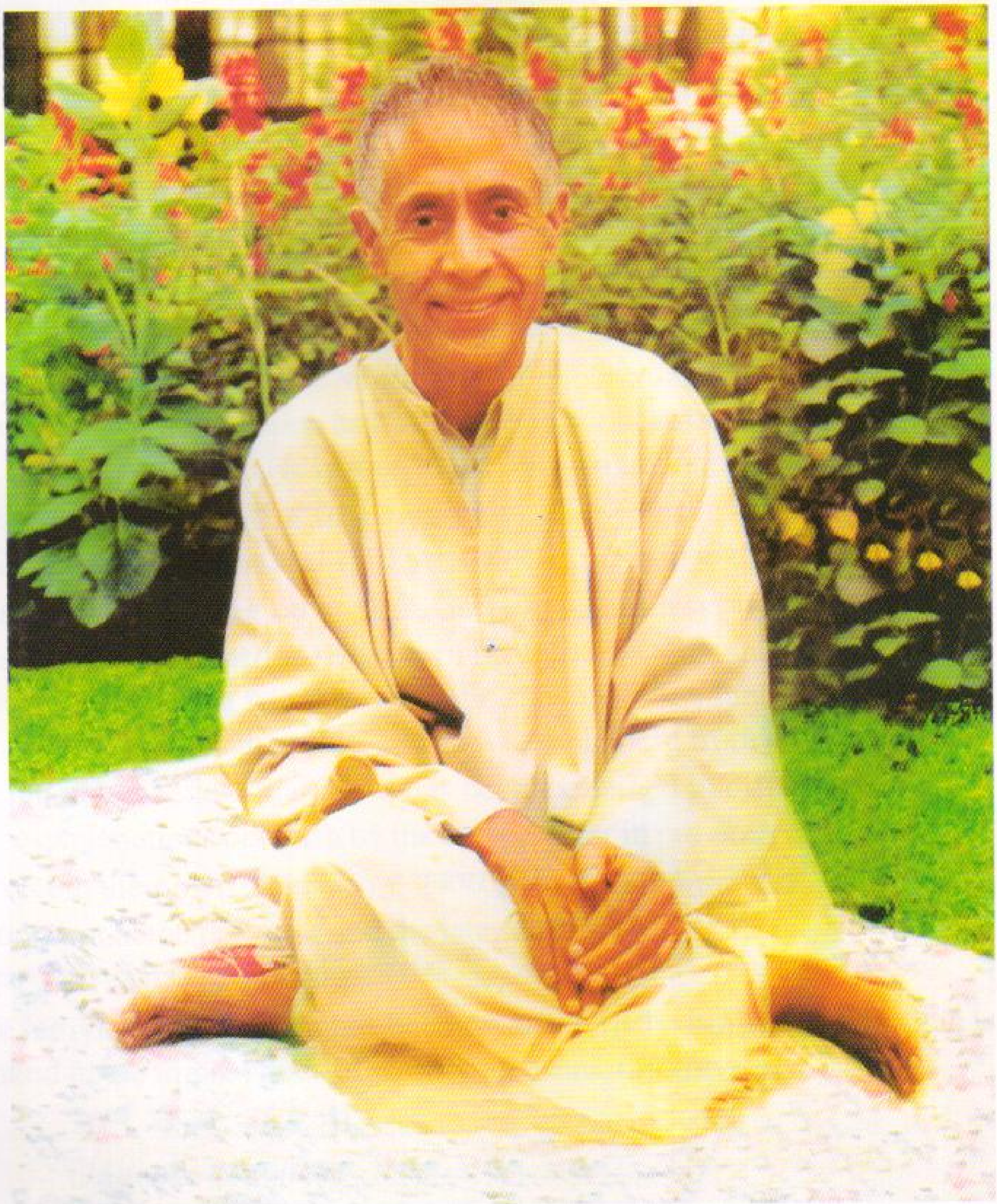

आविर्भावदिवस
9-5-1907

महासमाधिदिवस
27-9-1991